

Chapter चार

राजा निमि से द्रुमिल द्वारा ईश्वर के अवतारों का वर्णन

इस अध्याय में भगवान् श्री हरि के भूत, वर्तमान तथा भावी अवतारों के विविध रूपों तथा इन अवतारों में से हर एक के दिव्य गुणों का वर्णन किया गया है।

भले ही इस पृथ्वी पर धूल के कणों की गणना की जा सके, किन्तु समस्त शक्तियों के आधार असीम भगवान् हरि के असंख्य दिव्य गुणों की गणना करने का प्रयास निरी मूर्खता होगी। भगवान् नारायण ने अपनी ही माया से निर्मित पंचतत्त्वों से ब्रह्माण्ड की सृष्टि की, फिर परमात्मा-रूप में उस ब्रह्माण्ड में प्रवेश किया और पुरुष-अवतार के नाम से विख्यात हुए। वे ब्रह्मा के सत्कार रूप में रजोगुण के अन्तर्गत सृष्टि का कार्य सम्पन्न करते हैं, यज्ञेश्वर विष्णु के रूप में सतोगुण द्वारा रक्षा का कार्य करते हैं तथा रुद्र के रूप में तमोगुण के अन्तर्गत संहार का कार्य करते हैं। दक्ष की पुत्री तथा धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ से मुनियों में सर्वोच्च नर-नारायण के रूप में अवतार लेकर, उन्होंने अपने ही

व्यावहारिक दृष्टान्त द्वारा नैष्कर्म्यम् के विज्ञान का प्रदर्शन किया। जब राजा इन्द्र ने कन्दर्प तथा उनके अतिथियों को बदरिकाश्रम भेज दिया, क्योंकि वह नर-नारायण की तपस्या देख कर भयभीत तथा ईर्ष्यालु हो उठा था, तब मुनि-श्रेष्ठों ने कन्दर्प का सम्मान अतिथि-रूप में किया। तब शान्त हुए कन्दर्प ने भगवान् नर-नारायण ऋषि की स्तुति की। ऋषि के आदेश से कन्दर्प वहाँ से उर्वशी समेत लौट गया और इन्द्र के समक्ष जाकर उससे सारी बातें कह सुनाई।

भगवान् विष्णु सारे जगत के लाभ हेतु विविध अंशावतारों के रूप में प्रकट होते रहे हैं और उन्होंने हंस, दत्तात्रेय, सनक तथा अन्य कुमार-बन्धुओं एवं ऋषभदेव के रूप में आध्यात्मिक ज्ञान का उपदेश दिया। हयग्रीव के रूप में उन्होंने मधु असुर का वध किया और सारे वेदों को बचाया। मत्स्यावतार में उन्होंने पृथ्वी तथा सत्यव्रत मनु दोनों की रक्षा की। वराह अवतार में उन्होंने पृथ्वी का उद्धार किया और हिरण्याक्ष को विनष्ट किया। कूर्मावतार में उन्होंने मन्दर पर्वत को अपनी पीठ पर धारण किया। श्री हरि के रूप में उन्होंने गजराज को मोक्ष प्रदान किया। भगवान् ने गो-खुर में भरे जल में फँसे वालखिल्यों का उद्धार किया। उन्होंने ब्राह्मण की हत्या करने के पाप से इन्द्र का उद्धार किया और असुरों के महलों में बन्दी देव-पत्नियों को छोड़ा। नृसिंह-अवतार में उन्होंने हिरण्यकशिपु का वध किया। प्रत्येक मन्वन्तर में वे असुरों का वध करते हैं, देवताओं की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं और सारे लोकों की रक्षा करते हैं। वामन-रूप में उन्होंने बलि महाराज को ठगा, परशुराम-रूप में उन्होंने पृथ्वी को २१ बार क्षत्रिय-विहीन किया और श्री राम के रूप में सागर को अपने अधीन बनाकर रावण का वध किया। यदुवंश में अवतरित होकर उन्होंने पृथ्वी का भार उतारा। बुद्ध-रूप में वेदों के विरुद्ध अपने तर्कयुत उपदेश द्वारा उन्होंने उन असुरों को मोहित किया जो यज्ञ करने के लिए अयोग्य थे। कलियुग के अन्त में वे कल्कि-रूप में शूद्र राजाओं का विनाश करेंगे। इस प्रकार भगवान् हरि के असंख्य प्राकट्यों तथा कार्यकलापों का वर्णन इसमें हुआ है।

श्रीराजोवाच

यानि यानीह कर्माणि यैर्यैः स्वच्छन्दजन्मभिः ।

चक्रे करोति कर्ता वा हरिस्तानि बुवन्तु नः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; यानि यानि—प्रत्येक; इह—इस जगत में; कर्माणि—कर्मों के; यैः यैः—प्रत्येक द्वारा; स्वच्छन्द—स्वतंत्र रूप से; जन्मभिः—प्राकट्यों के; चक्रे—सम्पन्न किया; करोति—सम्पन्न करता है; कर्ता—सम्पन्न करेगा; वा—अथवा; हरिः—भगवान् हरि; तानि—उन्हें; ब्रुवन्तु—कहें; नः—हमसे।

राजा निमि ने कहा : भगवान् अपनी अन्तरंगा शक्ति से तथा अपनी इच्छानुसार भौतिक जगत में अवतरित होते हैं। अतएव आप हमें भगवान् हरि की उन विविध लीलाओं को बतलायें, जिन्हें उन्होंने भूतकाल में सम्पन्न किया, इस समय कर रहे हैं और अपने विविध अवतारों में भविष्य में सम्पन्न करेंगे।

तात्पर्य : इस चौथे अध्याय में राजा जयन्ती-पुत्र द्रुमिल को सम्बोधित करेगा। तृतीय अध्याय के ४८वें श्लोक में कहा गया था *मूर्त्याभिमतयात्मनः*—भगवान् का वह रूप जो मनुष्य को सर्वाधिक आकर्षक लगे उस विशेष रूप की ही पूजा की जानी चाहिए। इसी तरह पिछले अध्याय में कहा गया था *स्तवैः स्तुत्वा नमोद्धरिम्*—भगवान् हरि की स्तुतियों द्वारा प्रशंसा करने के बाद उनको नमस्कार करना चाहिए। इस तरह यह मान लिया जाता है कि पूजा करने वाले को पूर्ववर्णित पूजा-विधि सम्पन्न करने के लिए भगवान् के दिव्य गुणों तथा लीलाओं का पूरा-पूरा ज्ञान होता है। इसीलिए राजा निमि भगवान् के विविध अवतारों के बारे में उत्सुकता से पूछ रहे हैं, जिससे वे यह निश्चय कर सकें कि भगवान् का कौन-सा रूप उनके द्वारा पूजा के उपयुक्त होगा। यह विदित है कि राजा निमि वैष्णव हैं, जो भगवान् की प्रेमाभक्ति में अग्रसर होना चाहते हैं।

इस सन्दर्भ में यह ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि *अभिमत-मूर्ति* शब्द इसका सूचक नहीं है कि कोई अपने मन से भगवान् का स्वरूप गढ़ ले। *अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम्*। भगवान् के सारे स्वरूप *अनादिम्* अर्थात् नित्य हैं। अतएव किसी स्वरूप को मन से गढ़ने का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि ऐसा मनगढन्त *आदि* अर्थात् मनगढन्त रूप का प्रारम्भ होगा। *अभिमत-मूर्ति* का अर्थ यह है कि मनुष्य को भगवान् के नित्य रूपों में से उस रूप को चुन लेना चाहिए, जो उसमें सर्वाधिक भगवत्प्रेम उत्पन्न कर सके। ऐसे प्रेम की नकल नहीं की जा सकती, अपितु स्वतः उभरता है, जब कोई व्यक्ति गुरु द्वारा बताये गये अधिकृत नियमों का पालन करता है और *श्रीमद्भागवत* के इन वर्णनों को विनीत भाव से सुनता है।

श्रीद्रुमिल उवाच

यो वा अनन्तस्य गुणानन्तान्
 अनुक्रमिष्यन्स तु बालबुद्धिः ।
 रजांसि भूमेर्गणयेत्कथञ्चित्
 कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-द्रुमिलः उवाच—श्री द्रुमिल ने कहा; यः—जो; वै—निस्सन्देह; अनन्तस्य—असीम भगवान् के; गुरुणा—दिव्य गुणों को; अनन्तान्—असीम; अनुक्रमिष्यन्—वर्णन करने का प्रयास करते हुए; सः—वह; तु—निश्चय ही; बाल-बुद्धिः—बालकों जैसी बुद्धि वाला मनुष्य है; रजांसि—धूल के कण; भूमेः—पृथ्वी पर; गणयेत्—गिन सकता है; कथञ्चित्—किसी तरह; कालेन—समय के साथ; न एव—किन्तु नहीं; अखिल-शक्ति-धाम्नः—समस्त शक्तियों के आगार के (गुणों)।

श्री द्रुमिल ने कहा : अनन्त भगवान् के अनन्त गुणों का वर्णन करने या गिनने का प्रयास करने वाले व्यक्ति की बुद्धि मूर्ख बालक जैसी होती है। भले ही कोई महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति किसी तरह से पृथ्वी की सतह के धूल-कणों की गिनती करने का समय-अपव्ययी प्रयास कर ले, किन्तु ऐसा व्यक्ति भगवान् के आकर्षक गुणों की गणना नहीं कर सकता, क्योंकि भगवान् समस्त शक्तियों के आगार हैं।

तात्पर्य : राजा निमि की प्रार्थना करने पर कि नव-योगेन्द्र भगवान् के सभी गुणों और लीलाओं का वर्णन करें, उनमें से अब श्री द्रुमिल यहाँ बतलाते हैं कि जो अत्यन्त मूर्ख होगा, वही भगवान् के अनन्त गुणों और लीलाओं का वर्णन करने का प्रयास करेगा। किन्तु ऐसे मूर्ख बाल-तुल्य व्यक्ति उन अज्ञानी भौतिकतावादी विज्ञानियों से बहुत आगे बढ़े हुए हैं, जो भगवान् का उल्लेख किये बिना ही सम्पूर्ण ज्ञान का वर्णन करना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में, यद्यपि भगवान् का पूरी तरह वर्णन कर पाना असम्भव है, तो भी मूर्ख नास्तिक वैज्ञानिक भगवान् का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त किये बिना ही सम्पूर्ण ज्ञान का वर्णन करने का प्रयास करते हैं। ऐसे नास्तिक व्यक्तियों को संकुचित दृष्टि वाला और उनकी दिखावटी उपलब्धियों के बावजूद, जो अन्ततः दुःख और विनाश में समाप्त होती हैं, मन्द बुद्धि वाला मानना चाहिए। कहा जाता है किस्वयं भगवान् अनन्तदेव अपनी असंख्य जीभों से भगवान् के यश का पूरी तरह उच्चारण नहीं कर सकते। यहाँ पर दिया गया उदाहरण अत्यन्त उत्तम है। कोई भी मनुष्य पृथ्वी की सतह के कणों को गिन पाने की आशा नहीं करता, अतएव उसे अपने क्षुद्र प्रयास से भगवान् को समझने का मूर्खतापूर्ण प्रयास नहीं करना चाहिए। उसे विनीत भाव से उस ईश-ज्ञान को सुनना चाहिए, जिसे स्वयं ईश्वर ने *भगवद्गीता* में कहा है और इस तरह उसे धीरे धीरे *श्रीमद्भागवत* श्रवण करने की अवस्था प्राप्त करनी चाहिए। चैतन्य महाप्रभु के अनुसार सागर की एक बूँद को चख कर

सारे सागर के स्वाद का पता लगाया जा सकता है। इसी तरह भगवान् के विषय में विनीत भाव से श्रवण करके मनुष्य परम सत्य को गुणात्मक दृष्टि से जान सकता है, यद्यपि यह ज्ञान मात्रा की दृष्टि से कभी पूरा नहीं हो सकता।

भूतैर्यदा पञ्चभिरात्मसृष्टैः

पुरं विराजं विरचय्य तस्मिन् ।

स्वांशेन विष्टः पुरुषाभिधान-

मवाप नारायण आदिदेवः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

भूतैः—तत्त्वों के द्वारा; यदा—जब; पञ्चभिः—पाँच (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर); आत्म-सृष्टैः—अपने से उत्पन्न; पुरम्—शरीर; विराजम्—सूक्ष्म रूप ब्रह्माण्ड की; विरचय्य—रचना करके; तस्मिन्—उसके भीतर; स्व-अंशेन—अपने अंश के द्वारा; विष्टः—प्रवेश करते हुए; पुरुष-अभिधानम्—पुरुष-नाम; अवाप—धारण किया; नारायणः—नारायण; आदि-देवः—आदि भगवान्।

जब आदि भगवान् नारायण ने अपने में से उत्पन्न पाँच तत्त्वों से अपने विराट शरीर की रचना की और फिर अपने ही अंश से उस विराट शरीर में प्रविष्ट हो गये, तो वे पुरुष नाम से विख्यात हुए।

तात्पर्य : इस श्लोक के भूतै पञ्चभिः शब्द पाँच स्थूल तत्त्वों—क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर—के द्योतक हैं, जो भौतिक जगत की रचना करने वाले मूलभूत तत्त्व हैं। जब बद्धजीव इन पाँच तत्त्वों के भीतर प्रविष्ट होता है, तो मन तथा बुद्धि कार्य करने लगते हैं और चेतना प्रकट होती है। दुर्भाग्यवश प्रकृति के गुणों के अधीन जो चेतना प्रकट होती है, वह अहंकार द्वारा शासित होती है, जिसमें जीव गलती से अपने को भौतिक तत्त्वों का भोक्ता मान बैठता है। यद्यपि पुरुषोत्तम भगवान् वैकुण्ठ में स्थित रहते हैं, किन्तु यज्ञ के माध्यम से भौतिक तत्त्व भी उनके भोग के लिए होते हैं। यह भौतिक जगत देवी-धाम अर्थात् माया देवी का आवास कहलाता है। ब्रह्म-संहिता में बतलाया गया है कि भगवान् अपनी अपरा शक्ति माया द्वारा कभी भी आकृष्ट नहीं होते, किन्तु जब भौतिक सृष्टि का उपयोग भगवद्भक्ति में किया जाता है, तो वे जीव की भक्ति तथा त्याग से आकृष्ट होते हैं और इस तरह परोक्ष रूप में वे भौतिक जगत के भी भोक्ता हैं।

हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा तथा परमात्मा के रूप में भगवान् नारायण की लीलाएँ उनकी वैकुण्ठ-लोक की नित्य लीलाओं से निम्नस्तरीय होती होंगी। यदि इस जगत के

अपने कार्यों में दिव्य ज्ञान और आनन्द में भगवान् नारायण को कोई कमी लानी होती, तो उन्हें माया के सम्पर्क से प्रभावित बद्धजीव माना गया होता। किन्तु माया के प्रभाव से शाश्वत पृथक् रहने वाले परमात्मा-रूप नारायण के इस ब्रह्माण्ड में दिव्य कार्यकलाप उनके वैकुण्ठ-लोक के कार्यकलापों जैसे ही हैं। भगवान् के सारे कार्यकलाप उनकी अनन्त आध्यात्मिक लीलाओं के अंशरूप हैं।

यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो

यस्येन्द्रियैस्तनुभृतामुभयेन्द्रियाणि ।

ज्ञानं स्वतः श्वसनतो बलमोज ईहा

सत्त्वादिभिः स्थितिलयोद्धव आदिकर्ता ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

यत्-काये—जिनके शरीर के भीतर; एषः—यह; भुवन-त्रय—ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों के; सन्निवेशः—विस्तृत व्यवस्था; यस्य—जिसकी; इन्द्रियैः—इन्द्रियों के द्वारा; तनु-भृताम्—देहधारी जीवों के; उभय-इन्द्रियाणि—दोनों प्रकार की (ज्ञानार्जन करने वाली तथा कर्म करने वाली) इन्द्रियाँ; ज्ञानम्—ज्ञान; स्वतः—अपने से; श्वसनतः—उनके श्वास से; बलम्—शारीरिक बल; ओजः—इन्द्रियों की शक्ति; ईहा—कार्यकलाप; सत्त्व-आदिभिः—सतो, रजो तथा तमोगुणों द्वारा; स्थिति—पालन; लय—संहार; उद्धवे—तथा सृष्टि में; आदि-कर्ता—आदि कर्म करने वाला।

उनके शरीर के भीतर इस ब्रह्माण्ड के तीनों लोक विस्तृत रूप से स्थित हैं। उनकी दिव्य इन्द्रियाँ समस्त देहधारी जीवों की ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को उत्पन्न करती हैं। उनकी चेतना से बद्ध-ज्ञान उत्पन्न होता है और उनके प्रबल श्वास से देहधारी जीवों का शारीरिक बल, ऐन्द्रिय शक्ति तथा बद्ध-कर्म उत्पन्न होते हैं। वे सतो, रजो तथा तमोगुणों के माध्यम से आदि गति प्रदान करने वाले हैं। इस प्रकार ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन और संहार होता है।

तात्पर्य : जब बद्धजीव अपने अति श्रमसाध्य कार्यों से थक जाता है या रोग, मृत्यु अथवा भय से पराजित हो जाता है, तो वह व्यावहारिक ज्ञान अथवा कर्म को प्रकट करने की सारी शक्ति खो बैठता है। इस तरह हमें यह समझना चाहिए कि भगवान् की कृपा के बिना न तो हम कार्य कर सकते हैं, न ज्ञान का अनुशीलन कर सकते हैं। भगवान् की कृपा से बद्धजीव को भौतिक शरीर प्राप्त होता है, जो भगवान् के असीम आध्यात्मिक शरीर का विकृत प्रतिबिम्ब होता है। इस तरह जीव समाज, मैत्री तथा प्रेम के अज्ञानपूर्ण भौतिकतावादी कार्यकलापों में व्यस्त रहता है। किन्तु भौतिक शरीर के अदृश्य विनाश के साथ ही सारा कार्यक्रम सहसा समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार हमारा भौतिक ज्ञान क्षण-भर में किसी भी समय शून्य हो सकता है, क्योंकि भौतिक प्रकृति स्वयं निरन्तर परिवर्तित होती रहती है।

भगवान् ही ब्रह्माण्ड के सृजन, पालन तथा संहार के आदि चालक हैं। जीव को चाहिए कि जिसने मोह की इतनी सुविधा उसे प्रदान की है, वह उस भगवान् को समझने का प्रयास करे। वास्तव में भगवान् चाहते हैं कि बद्धजीव उनकी शरण में जाये और भगवान् के यहाँ आनन्द तथा ज्ञान से युक्त नित्य जीवन पुनः प्राप्त करे। बद्धजीव को तर्क करना चाहिए, “यदि भगवान् मुझे अज्ञान में लीन होने के लिए इतनी सुविधा प्रदान कर रहे हैं, तो वे अवश्य ही इस अज्ञान से निकलने के लिए मुझे उससे भी अधिक सुविधाएँ प्रदान कर सकते हैं, यदि मैं मूर्खतापूर्ण चिन्तन न करके, उनके आदेश का विनयपूर्वक पालन करूँ।

इस श्लोक में गर्भोदकशायी विष्णु का अर्थात् भगवान् के पुरुष-अवतारों में दूसरी अवस्था का वर्णन हुआ है। यह गर्भोदकशायी विष्णु, जिसकी महिमा का वर्णन पुरुष सूक्त स्तुतियों में हुआ है, हर जीव के हृदय में प्रवेश करने के लिए परमात्मा-रूप में अपना विस्तार करता है। भगवान् के नाम—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—के कीर्तन द्वारा इस पतित युग में भी भगवान् को मनुष्य के हृदय में पाया जा सकता है। भगवान् हमारी ही तरह पुरुष हैं, किन्तु वे अनन्त हैं। फिर भी क्षुद्र जीव तथा अनन्त भगवान् के मध्य साकार प्रेमपूर्ण सम्बन्ध विद्यमान रहता है। इस साकार सम्बन्ध के प्रसंग में भक्तियोग एकमात्र उपयुक्त विधि है, जिससे हम भगवान् के नित्य दास के रूप में अपनी स्वाभाविक स्थिति को जान सकते हैं।

आदावभूच्छतधृती रजसास्य सर्गे

विष्णुः स्थितौ क्रतुपतिर्द्विजधर्मसेतुः ।

रुद्रोऽप्ययाय तमसा पुरुषः स आद्य

इत्युद्भवस्थितिलयाः सततं प्रजासु ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

आदौ—प्रारम्भ में; अभूत्—बना; शत-धृतिः—ब्रह्मा; रजसा—रजोगुण से; अस्य—इस जगत का; सर्गे—सृष्टि में; विष्णुः—भगवान् विष्णु; स्थितौ—पालन में; क्रतु-पतिः—यज्ञ का स्वामी; द्विज—द्विजन्मा ब्राह्मणों का; धर्म—धार्मिक कर्तव्यों का; सेतुः—रक्षक; रुद्रः—शिव; अप्ययाय—संहार हेतु; तमसा—तमोगुण द्वारा; पुरुषः—परम पुरुष; सः—वह; आद्यः—आदि; इति—इस प्रकार; उद्भव-स्थिति-लयाः—सृजन, पालन तथा संहार; सततम्—सदैव; प्रजासु—उत्पन्न किये गये प्राणियों में से।

प्रारम्भ में आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने के निमित्त रजोगुण के माध्यम से ब्रह्मा का रूप प्रकट किया। भगवान् ने ब्रह्माण्ड का पालन करने के लिए विष्णु-रूप में अपना स्वरूप प्रकट किया, जो यज्ञ का स्वामी है और द्विजन्मा ब्राह्मणों तथा उनके

धार्मिक कर्तव्यों का रक्षक है। और जब ब्रह्माण्ड का संहार करना होता है, तो यही भगवान् तमोगुण का प्रयोग करते हुए अपना रुद्र-रूप प्रकट करते हैं। इस तरह उत्पन्न किये गये जीव सदैव सृष्टि, पालन तथा संहार की शक्तियों के अधीन रहते हैं।

तात्पर्य : पिछले श्लोक में भगवान् को *आदि-कर्ता* अर्थात् भौतिक जगत के सृजन, पालन तथा संहार के लिए उत्तरदायी आदि पुरुष कहा गया था। श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार *आदि-कर्ता* का अर्थ परवर्ती सृजनकर्ता, पालक तथा संहारक है। अन्यथा *आदि* का कोई अर्थ नहीं होगा। इसलिए इस श्लोक में बतलाया गया है कि परमसत्य अपना विस्तार गुणावतारों के रूप में करते हैं, जो क्रमशः रजो, सतो तथा तमोगुणों के द्वारा ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन और संहार करते हैं।

यहाँ यह महत्त्वपूर्ण बात है कि यद्यपि इस श्लोक में रजोगुण के माध्यम से सृष्टि और तमोगुण के माध्यम से संहार का वर्णन हुआ है, किन्तु सतोगुण द्वारा भगवान् विष्णु द्वारा पालन का उल्लेख नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि विष्णु *विशुद्ध सत्त्व* हैं। यद्यपि शिव तथा ब्रह्मा प्रकृति के गुणों के अधीक्षकों के रूप में अपने अपने कर्तव्यों द्वारा थोड़ा-बहुत प्रभावित होते हैं, किन्तु भगवान् विष्णु *विशुद्ध सत्त्व* हैं—वे सतोगुण के द्वारा भी कल्मष से परे हैं। जैसाकि वेदों में कहा गया है *न तस्य कार्य करणंच विद्यते*—भगवान् के कोई वृत्तिपरक कर्तव्य नहीं है। एक ओर जहाँ शिव तथा ब्रह्मा को भगवान् के दासों के रूप में माना जाता है, वहीं विष्णु नितान्त दिव्य हैं।

श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार इस श्लोक में विष्णु को *ऋतुपतिः* कहा गया है, जो इसके पूर्व युग में प्रजापति रुचि के पुत्र सुयज्ञ के अवतार समझे जाते हैं। ब्रह्मा तथा शिव तो भगवान् की सेवा में दत्तचित्त रहते हैं, किन्तु विष्णु साक्षात् भगवान् हैं, अतएव इस श्लोक में वर्णित ब्राह्मणों तथा धर्म का पालन करने के (*द्विजधर्म सेतु*) उनके कार्यकलाप वृत्तिपरक कर्तव्य नहीं अपितु *लीला* हैं। अतः श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार *गुणावतार* होने के अतिरिक्त विष्णु *लीलावतार* भी हैं। *महाभारत* (शान्ति पर्व) में विष्णु से निकलने वाले कमल-पुष्प से ब्रह्मा का जन्म और तत्पश्चात् ब्रह्मा की क्रुद्ध आँखों से शिवजी का जन्म दिखलाया गया है। किन्तु विष्णु स्वयंप्रकाश भगवान् हैं, जो अपनी अन्तरंगा शक्ति से ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट होते हैं, जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (३.८.१५) में कहा गया है—

तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः ।

प्रावीविशत् सर्वगुणावभासम् ॥

निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् विष्णु परम नियन्ता हैं, जिनका साकार रूप सच्चिदानन्द है, जो अनादि हैं, किन्तु सभी वस्तुओं के आदि हैं, जो गोविन्द-नाम से जाने जाते हैं और जो समस्त कारणों के कारण हैं, जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है। फिर भी वही नित्य भगवान् ब्रह्माजी तथा शिव के रूप में प्रकट होते हैं, क्योंकि ब्रह्मा तथा शिव आदि नियन्ताओं के रूप में भगवान् की शक्ति तथा परम इच्छा प्रकट करते हैं, यद्यपि वे स्वयं सर्वोच्च नहीं हैं।

धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ठ मूर्त्या

नारायणो नर ऋषिप्रवरः प्रशान्तः ।

नैष्कर्म्यलक्षणमुवाच चचार कर्म

योऽद्यापि चास्त ऋषिवर्यनिषेविताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

धर्मस्य—धर्म की (पत्नी); दक्ष-दुहितरि—दक्ष की पुत्री द्वारा; अजनिष्ठ—उत्पन्न हुआ था; मूर्त्याम्—मूर्ति द्वारा; नारायणः नरः—नर-नारायण; ऋषि-प्रवरः—ऋषि श्रेष्ठ; प्रशान्तः—अत्यन्त शान्त; नैष्कर्म्य-लक्षणम्—समस्त भौतिक कर्म की समाप्ति के लक्षण से युक्त; उवाच—कहा; चचार—तथा सम्पन्न किया; कर्म—कर्तव्य; यः—जो; अद्य अपि—आज भी; च—भी; आस्ते—जीवित है; ऋषि-वर्य—श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा; निषेवित—सेवा किया जाकर; अङ्घ्रिः—पाँव।

परम शान्त तथा ऋषियों में श्रेष्ठ नर-नारायण ऋषि का जन्म धर्म तथा उनकी पत्नी दक्षपुत्री मूर्ति के पुत्र के रूप में हुआ था। नर-नारायण ऋषि ने भगवद्भक्ति की शिक्षा दी, जिससे भौतिक कर्म का अन्त हो जाता है और उन्होंने स्वयं इस ज्ञान का पूरी तरह से अभ्यास किया। वे आज भी जीवित हैं और उनके चरणकमलों की सेवा बड़े बड़े सन्त-पुरुषों द्वारा की जाती है।

तात्पर्य : ऐसा ज्ञात है कि नर-नारायण ऋषि ने नारद मुनि जैसे महान् सन्त-पुरुषों को दिव्य ज्ञान प्रदान किया। उन्हीं शिक्षाओं के बल पर नारद मुनि नैष्कर्म्य का वर्णन कर सके, जो कर्म का विनाश करने वाली भगवान् की भक्ति है, जैसाकि श्रीमद्भागवत (१.३.८) में कहा गया है—तन्त्रं सात्वतम् आचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः । आत्म-स्वरूप या कि जीव का नित्य स्वरूप भगवान् की सेवा है। किन्तु हमारे नित्य स्वरूप की अनुभूति जीवन की भौतिक विचारधारा से प्रच्छन्न है, जिस प्रकार हमारे जीवन की सामान्य जानकारी स्वप्न द्वारा प्रच्छन्न है। नैष्कर्म्य केवल भगवद्भक्ति द्वारा सम्भव है जैसाकि स्वयं नारद मुनि ने कहा है : नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानम् अलं निरञ्जनम् (भागवत १.५.१२)। सामान्य कर्म को नैष्कर्म्य में बदलने की विधि का सारांश श्रील प्रभुपाद ने नारद मुनि द्वारा

कहे गये इस श्लोक की टीका में दिया है, “जिस सकाम कर्म में प्रायः सारे लोग लगे रहते हैं वह चाहे प्रारम्भ में हो या अन्त में, सदैव कष्टकर होता है। यह तभी फलप्रद हो सकता है, जब इसे भगवान् की सेवा के अधीन कर दिया जाय। *भगवद्गीता* में भी इसकी पुष्टि हुई है कि ऐसे सकाम कर्म के फल को भगवान् की सेवा में अर्पित कर दिया जाय, अन्यथा इससे भव-बन्धन उत्पन्न होता है। सकाम कर्मों का असली भोक्ता भगवान् है, अतएव जब इसे जीवों की इन्द्रिय-तृप्ति में लगाया जाता है, तो यह कष्ट का कारण बन जाता है।” *मत्स्य पुराण* के अनुसार (३.१०) नर-नारायण ऋषि के पिता, धर्म, का जन्म ब्रह्मा के दाहिने वक्षस्थल से हुआ था और बाद में प्रजापति दक्ष की तेरह पुत्रियों से उनका विवाह हुआ था। भगवान् स्वयं मूर्ति देवी की कुक्षि से उत्पन्न हुए।

इन्द्रो विशङ्क्य मम धाम जिघृक्षतीति
 कामं न्ययुङ्क्त सगणं स बदर्युपाख्यम् ।
 गत्वाप्सरोगणवसन्तसुमन्दवातैः
 स्त्रीप्रेक्षणेषुभिरविध्यदतन्महिज्ञः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

इन्द्रः—इन्द्र; विशङ्क्य—डर कर; मम—मेरा; धाम—राज्य; जिघृक्षति—निगल जाना चाहता है; इति—इस प्रकार सोच कर; कामम्—कामदेव को; न्ययुङ्क्त—लगाया; स-गणम्—उसके संगियों समेत; सः—उस (कामदेव) ने; बदरी-उपाख्यम्—बदरिकाश्रम तक; गत्वा—जाकर; अप्सरः-गण—अप्सराओं के साथ; वसन्त—वसन्त ऋतु; सु-मन्द-वातैः—तथा मन्द वायु से; स्त्री-प्रेक्षण—स्त्रियों की चितवनों से (बने); इषुभिः—तीरों से; अविध्यत्—बींधने का प्रयास किया; अतत्-महि-ज्ञः—उनकी महानता को न जानते हुए।

यह सोच कर कि नर-नारायण ऋषि अपनी कठिन तपस्या से अत्यन्त शक्तिशाली बन कर उसका स्वर्ग का राज्य छीन लेंगे, राजा इन्द्र भयभीत हो उठा। इस तरह भगवान् के अवतार की दिव्य महिमा को न जानते हुए इन्द्र ने कामदेव तथा उसके संगियों को भगवान् के आवास बदरिकाश्रम भेजा। जब वसन्त ऋतु की मनोहारी मन्द वायु ने अत्यन्त कामुक वातावरण उत्पन्न कर दिया, तो स्वयं कामदेव ने सुन्दर स्त्रियों की बाँकी चितवनों के तीरों से भगवान् पर आक्रमण किया।

तात्पर्य : यह श्लोक तथा इसके आगे के ९ श्लोकों में भगवान् के परम वैराग्य-ऐश्वर्य को दर्शाया गया है। *अतन्-महि-ज्ञः* अर्थात् “भगवान् की महिमा को न समझते हुए” शब्द सूचित करता है कि भगवान् को इन्द्र अपने ही स्तर पर रख रहा था और उन्हें सामान्य भोक्ता समझ रहा था, जो संसारी

यौन-जीवन के प्रति आकृष्ट होता है। इन्द्र द्वारा नर-नारायण ऋषि को गिराने के षडयंत्र से भगवान् तनिक भी प्रभावित नहीं हुए, किन्तु इससे इन्द्र की संकुचित दृष्टि प्रकट होती है। स्वर्गलोक से जुड़े होने के कारण इन्द्र यह मान बैठा था कि भगवान् स्वर्ग-धाम को लेने जैसे क्षणिक मायाजाल के लिए तपस्या कर रहे थे (त्रिदशपूर आकाशपुष्पायते) ।

विज्ञाय शक्रकृतमक्रममादिदेवः

प्राह प्रहस्य गतविस्मय एजमानान् ।

मा भैर्विभो मदन मारुत देववध्वो

गृहीत नो बलिमशून्यमिमं कुरुध्वम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

विज्ञाय—जान कर; शक्र—इन्द्र द्वारा; कृतम्—किया गया; अक्रमम्—अपराध; आदि-देवः—आदि भगवान्; प्राह—बोले; प्रहस्य—हँस कर; गत-विस्मयः—गर्व से रहित; एजमानान्—थरथरा रहे; मा भैः—मत डरो; विभो—हे सर्वशक्तिमान्; मदन—कामदेव; मारुत—हे वायु-देव; देव-वध्वः—हे देवताओं की पत्नियो; गृहीत—स्वीकार करो; नः—हमसे; बलिम्—ये उपहार; अशून्यम्—रिक्त नहीं; इमम्—इस (आश्रम) को; कुरुध्वम्—बनाइये ।

इन्द्र द्वारा किये गये अपराध को समझते हुए आदि भगवान् गर्वित नहीं हुए। अपितु कामदेव तथा कँपकँपा रहे उसके साथियों से वे हँसते हुए इस प्रकार बोले, “हे शक्तिशाली मदन, हे वायु-देव तथा देवताओं की पत्नियो, डरो नहीं। कृपया मेरे द्वारा दी जाने वाली भेंटें स्वीकार करो और अपनी उपस्थिति से मेरे आश्रम को पवित्र बनाओ।”

तात्पर्य : गतविस्मय शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि कोई व्यक्ति कठिन तपस्या करके गर्वित हो उठता है, तो ऐसी तपस्या को भौतिक माना जाता है। किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि मैं महान् तपस्वी हूँ। श्री नर-नारायण तुरन्त ही इन्द्र की मूर्खता समझ गये, इसीलिए उन्हें सारी स्थिति पर हँसी आ रही थी। कामदेव तथा स्वर्ग की स्त्रियाँ अपने महान् अपराध को समझ कर नर-नारायण के समक्ष इस भय से काँप रही थीं कि उन्हें प्रबल शाप मिलने वाला है। किन्तु भगवान् ने अत्यन्त उदात्त साधु-आचरण प्रदर्शित करते हुए उन्हें आश्चस्त किया *मा भै* अर्थात् घबड़ाओ नहीं और उन्हें उत्तम *प्रसादम्* तथा पूजा की अन्य वस्तुएँ भेंट कीं। उन्होंने कहा, “यदि आप लोग मुझे देवताओं तथा अन्य पूजनीय व्यक्तियों के लिए अपना आतिथ्य नहीं करने देंगे, तो फिर मेरे आश्रम का क्या लाभ है? मेरा आश्रम आप जैसे सम्मान्य व्यक्तियों का आदर किये बिना शून्य लगेगा।

इसी प्रकार कृष्णभावनामृत आन्दोलन विश्व के प्रमुख नगरों में सुन्दर केन्द्रों की स्थापना कर रहा है। इन केन्द्रों में से कुछ में, यथा लॉस ऐंजिलिस, मुम्बई, लन्दन, पेरिस तथा मेलबोर्न में भव्य प्रचार-आश्रम स्थापित हैं। किन्तु इन सुन्दर इमारतों में जो वैष्णव रह रहे हैं, वे यह अनुभव करते हैं कि यदि इनमें अतिथिगण कृष्ण के विषय में सुनने और उनके नाम-कीर्तन करने के लिए नहीं आते, तो वे शून्य (रिक्त) हैं। इस प्रकार सुन्दर आश्रमों की स्थापना अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए न करके शान्ति से कृष्णभावनामृत सम्पन्न करने और अन्यो को कृष्णभावनामृत अंगीकार करने के लिए प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से की जानी चाहिए।

इत्थं ब्रुवत्यभयदे नरदेव देवाः

सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः ।

नैतद्विभो त्वयि परेऽविकृते विचित्रं

स्वारामधीरनिकरानतपादपद्मे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस तरह से; ब्रुवति—बोल चुकने पर; अभय-दे—अभय प्रदान करने वाला; नर-देव—हे राजा (निमि); देवाः—देवतागण (कामदेव तथा उसके साथी); स-व्रीड—लज्जावश; नम्र—झुके हुए; शिरसः—अपने सिरों से; स-घृणम्—दया की भीख माँगते; तम्—उससे; ऊचुः—बोले; न—नहीं; एतत्—यह; विभो—हे सर्वशक्तिमान; त्वयि—तुम्हारे लिए; परे—परम; अविकृते—अपरिवर्तित; विचित्रम्—विस्मयकारी; स्व-आराम—आत्मतृष्ट; धीर—तथा गम्भीर मन वाले; निकर—समूह द्वारा; आनत—झुकाया गया; पाद-पद्मे—चरणकमलों पर।

हे राजा निमि, जब नर-नारायण ऋषि ने देवताओं के भय को दूर करते हुए इस प्रकार कहा, तो उन्होंने लज्जा से अपने सिर झुका लिये और भगवान् से दया की भीख माँगते हुए इस प्रकार बोले, “हे प्रभु, आप सदैव दिव्य हैं, मोह की पहुँच से परे हैं, अतएव आप नित्य अविकारी हैं। हमारे महान् अपराध के बावजूद आपकी अहैतुकी कृपा आपमें कोई असामान्य घटना नहीं है, क्योंकि असंख्य आत्माराम तथा क्रोध और मिथ्या अहंकार से मुक्त मुनिजन आपके चरणकमलों पर विनयपूर्वक अपना शीश झुकाते हैं।

तात्पर्य : देवताओं ने कहा : “हे प्रभु! यद्यपि देवता तथा साधारण मनुष्य जैसे सामान्य जीव गर्व तथा क्रोध से सदा विचलित होते रहते हैं, किन्तु आप दिव्य हैं। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि गलती करने वाले देवतागण आपकी महिमा को न समझ पाये हों।”

त्वां सेवतां सुरकृता बहवोऽन्तरायाः

स्वौको विलङ्घ्य परमं व्रजतां पदं ते ।

नान्यस्य बर्हिषि बलीन्ददतः स्वभागान्

धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि ॥ १० ॥

शब्दार्थ

त्वाम्—तुम; सेवताम्—सेवा करने वालों को; सुर-कृताः—देवताओं द्वारा बनाये गये; बहवः—अनेक; अन्तरायाः—उत्पात; स्व-ओकः—अपने ही धाम (देव-लोक); विलङ्घ्य—पार करके; परमम्—परम; व्रजताम्—जाने वाले; पदम्—धाम को; ते—तुम्हारे; न—ऐसे नहीं हैं; अन्यस्य—दूसरों के; बर्हिषि—यज्ञों में; बलीन्—भेंटें; ददतः—देने वाले के लिए; स्व-भागान्—अपने अपने हिस्सों को; धत्ते—(भक्तों के) स्थान; पदम्—पाँव; त्वम्—तुम; अविता—रक्षक; यदि—इसलिए; विघ्न—बाधा के; मूर्ध्नि—सिर पर।

देवतागण उन लोगों के मार्ग में अनेक अवरोध प्रस्तुत करते हैं, जो देवताओं के अस्थायी आवासों को लाँघ कर, आपके परम धाम पहुँचने के लिए आपकी पूजा करते हैं। वे लोग, जो यज्ञों में देवताओं को उनका नियत भाग भेंट में दे देते हैं, ऐसे किसी अवरोध का सामना नहीं करते। किन्तु क्योंकि आप अपने भक्त के प्रत्यक्ष रक्षक हैं, अतएव वह उन सभी अवरोधों को, जो उसके सामने देवताओं द्वारा रखे जाते हैं, लाँघ जाने में समर्थ होता है।

तात्पर्य : कामदेव समेत सारे देवतागण भगवान् नर-नारायण ऋषि के चरणकमलों पर किये गये अपराध को समझते हुए यहाँ पर भगवान् की तुलना में देवताओं के तुच्छ पद की ओर इंगित कर रहे हैं। जिस तरह किसान को अपनी कृषि-आय का कुछ हिस्सा कर के रूप में राजा को या राजनैतिक प्रधान को देना पड़ता है, उसी तरह सारे मनुष्यों को अपनी भौतिक सम्पत्ति का कुछ प्रतिशत देवताओं को यज्ञ-रूप में देना होता है। किन्तु *भगवद्गीता* में भगवान् ने बतलाया है कि देवता भी उनके सेवक हैं और वे स्वयं ही देवताओं के माध्यम से सारे वर देते हैं। *मयैव विहितान् हि तान्*। यद्यपि वैष्णव भक्त को देवताओं की पूजा करने की कोई आवश्यकता नहीं है, किन्तु देवतागण अपने उच्च पद से गर्वित होकर कभी कभी भगवान् के प्रति वैष्णव की एकनिष्ठता का विरोध करते हैं और भक्त को नीचे गिराने का प्रयास करते हैं, जैसाकि इस श्लोक में वर्णित है (*सुरकृता बहवोऽन्तरायाः*)। किन्तु देवतागण यहाँ इंगित करते हैं कि कृष्ण अपने भक्तों के प्रत्यक्ष रक्षक हैं। अतएव तथाकथित अवरोध एकनिष्ठ भक्त के लिए आध्यात्मिक उन्नति में योगदान करने वाले बन जाते हैं।

यहाँ पर देवता कहते हैं : “हे प्रभु! हमने सोचा कि हम अपनी मूर्खतापूर्ण चालों से आपकी चेतना को विचलित कर सकते हैं। किन्तु आपकी कृपा से आपके भक्त तक हमारी परवाह नहीं करते,

अतएव आप हमारे मूर्खतापूर्ण व्यवहार को गम्भीरता से क्यों लेने लगे?’’ यहाँ पर यदि शब्द इस निश्चितता का सूचक है कि कृष्ण अपने शरणागतों के सदैव रक्षक हैं। यद्यपि भगवान् की महिमा का प्रचार करने वाले निष्ठावान् भक्त के मार्ग में अनेक अवरोध हो सकते हैं, किन्तु ऐसे अवरोधों से भक्तों का संकल्प दृढ़ होता है। अतएव श्रील जीव गोस्वामी के अनुसार देवताओं द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले अवरोध उस निसेनी या सीढ़ी के समान हैं, जिनसे चढ़ कर भक्त भलीभाँति भगवद्भ्राम पहुँच जाता है। ऐसा ही श्लोक श्रीमद्भागवत में अन्यत्र (१०.२.३३) आया है—

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्

भ्रश्यन्ति मार्गात् त्वयि बद्धसौहदाः ।

त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया

विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥

“हे माधव, हे लक्ष्मी-पति, यदि आपके प्रेमी भक्त कभी भक्ति के मार्ग से च्युत होते हैं, तो वे अभक्तों की तरह नहीं गिरते, क्योंकि आप तब भी उनकी रक्षा करते हैं। इस तरह वे अपने प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करके निर्भय विचरण करते हैं और भक्ति में प्रगति करते जाते हैं।”

क्षुत्तृट्त्रिकालगुणमारुतजैह्वशैष्णा-

नस्मानपारजलधीनतितीर्य केचित् ।

क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गो-

र्मज्जन्ति दुश्चरतपश्च वृथोत्सृजन्ति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

क्षुत्—भूख; तृट्—प्यास; त्रि-काल-गुण—काल की तीन अवस्थाओं की अभिव्यक्ति (यथा गर्मी, सर्दी, वर्षा आदि); मारुत—हवा; जैह्व—जीभ का भोग; शैष्णान्—तथा शिश्न के; अस्मान्—हम; अपार—असंख्य; जल-धीन्—समुद्र; अतितीर्य—पार करके; केचित्—कुछ मनुष्य; क्रोधस्य—क्रोध का; यान्ति—प्राप्त करते हैं; विफलस्य—जो कि व्यर्थ है; वशम्—वेग को; पदे—पाँव या खुर (के चिह्न) में; गोः—गाय के; मज्जन्ति—डूब जाते हैं; दुश्चर—कर पाना कठिन; तपः—तपस्या; च—तथा; वृथा—व्यर्थ; उत्सृजन्ति—वे फेंक देते हैं।

कुछ लोग तो ऐसे हैं, जो हमारे प्रभाव को लाँघने के उद्देश्य से कठिन तपस्या करते हैं, जो भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी तथा कालजनित अन्य परिस्थितियों यथा रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रिय के वेगों की अन्तहीन लहरों से युक्त अगाध समुद्र की तरह है। इस तरह कठिन तपस्या के द्वारा इन्द्रिय-तृप्ति के इस समुद्र को पार कर लेने पर भी, ऐसे व्यक्ति व्यर्थ के क्रोध के वशीभूत होने

पर मूर्खता से गो-खुर में डूब जाते हैं। इस तरह वे अपनी कठिन तपस्या के लाभ को व्यर्थ गँवा बैठते हैं।

तात्पर्य : जो लोग भगवान् की भक्ति स्वीकार नहीं करते, उन्हें दो कोटियों में रखा जा सकता है। वे जो इन्द्रिय-तृप्ति में लगे हैं, देवताओं द्वारा भूख, प्यास, संभोग-इच्छा, अतीत के पश्चाताप तथा भविष्य की आशा जैसे हथियारों से सरलता से जीत लिये जाते हैं। ऐसे भौतिकतावादी मूर्ख देवताओं द्वारा सरलता से वश में कर लिये जाते हैं, क्योंकि देवता ही इन्द्रिय-तृप्ति प्रदान करने वाले होते हैं। किन्तु श्रीधर स्वामी के अनुसार जो लोग अपनी भौतिक इन्द्रियों की इच्छाओं का दमन करना चाहते हैं और भगवान् की शरण में गये बिना देवताओं के नियंत्रण से बचना चाहते हैं, वे इन्द्रिय-भोगियों से भी अधिक मूर्ख हैं। जो लोग भगवान् की सेवा न करके कठिन तपस्या करते हैं, वे भले ही इन्द्रिय-तृप्ति के सागर को पार कर लें, किन्तु अन्ततः क्रोध के क्षुद्र गड्ढे में डूब जाते हैं। जो केवल भौतिक तपस्या करता है, वह वास्तव में अपने हृदय को शुद्ध नहीं करता। भौतिक संकल्प से भले ही वह इन्द्रियों के कार्यकलापों को सीमित कर ले, किन्तु तो भी उसका हृदय भौतिक इच्छाओं से पूर्ण रहता है। इसका व्यावहारिक परिणाम होता है क्रोध। हमने ऐसे तमाम कृत्रिम तपस्वियों को देखा है, जो इन्द्रियों के निषेध के कारण अत्यन्त कटु तथा क्रुद्ध बन जाते हैं। ऐसे लोग भगवान् के प्रति अनमने होने से न तो चरम मोक्ष प्राप्त कर पाते हैं, न ही इन्द्रिय-तृप्ति का भोग कर पाते हैं, प्रत्युत वे क्रोधी बन जाते हैं और वे अपनी कठिन तपस्या का फल दूसरों को शाप देने या मिथ्या अहंकार जताने में गँवा देते हैं। यह ज्ञात है कि जब कोई योगी शाप देता है, तो वह अपनी संचित योगशक्ति को कम कर देता है। इस तरह क्रोध न तो मुक्ति दिला पाता है, न ही भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति, अपितु भौतिक तपस्या के समस्त फलों को जला देता है। ऐसा क्रोध व्यर्थ होने से गो-खुर के व्यर्थ कीचड़ की तरह है। इस प्रकार भगवान् के प्रति अनमने योगीजन इन्द्रिय-तृप्ति के सागर को पार करके क्रोध के कीचड़ में डूब जाते हैं। यद्यपि देवता यह स्वीकार करते हैं कि भगवद्भक्त वास्तव में भौतिक जीवन के कष्टों को जीत लेते हैं, किन्तु यहाँ यह प्रकट है कि जो योगी भगवान् की भक्ति में रुचि नहीं रखते, उन्हें ऐसा फल प्राप्त नहीं होता।

इति प्रगृणतां तेषां स्त्रियोऽत्यद्भुतदर्शनाः ।

दर्शयामास शुश्रूषां स्वर्चिताः कुर्वतीर्विभुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; प्रगृणताम्—प्रशंसा कर रहे; तेषाम्—उनकी उपस्थिति में; स्त्रियः—स्त्रियाँ; अति-अद्भुत—अत्यन्त विचित्र; दर्शनाः—देखने में; दर्शयाम् आस—दिखलाया; शुश्रूषाम्—आदरपूर्ण सेवा; सु-अर्चिताः—अच्छी तरह से अलंकृत; कुर्वतीः—करते हुए; विभुः—सर्वशक्तिमान ईश्वर।

जब देवतागण इस तरह से भगवान् की प्रशंसा कर रहे थे, तो सर्वशक्तिमान प्रभु ने सहसा उनकी आँखों के सामने अनेक स्त्रियाँ प्रकट कर दीं, जो आश्चर्यजनक ढंग से भव्य लगती थीं और सुन्दर वस्त्रों तथा आभूषणों से सज्जित थीं और भगवान् की सेवा में लगी हुई थीं।

तात्पर्य : भगवान् नर-नारायण ने देवताओं की मिथ्या प्रतिष्ठा को दूर करते हुए उन पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की। यद्यपि देवताओं को अपने सौन्दर्य तथा अपनी संगिनियों के ऊपर गर्व था, किन्तु भगवान् ने यह दिखला दिया कि पहले से उनकी सेवा असंख्य स्त्रियों द्वारा की जा रही है, जो देवताओं की किसी भी संगिनी से अधिक सुन्दर थीं। भगवान् ने अपनी योगशक्ति से अद्वितीय सुन्दरी स्त्रियाँ प्रकट कर दीं।

ते देवानुचरा दृष्ट्वा स्त्रियः श्रीरिव रूपिणीः ।

गन्धेन मुमुहुस्तासां रूपौदार्यहतश्रियः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; देव-अनुचराः—देवताओं के अनुयायी; दृष्ट्वा—देख कर; स्त्रियः—इन स्त्रियों को; श्रीः—लक्ष्मी देवी; इव—मानो; रूपिणीः—साक्षात्; गन्धेन—सुगन्ध से; मुमुहुः—मोहित हो गये; तासाम्—उन स्त्रियों के; रूप—सौन्दर्य के; औदार्य—भव्यता से; हत—विनष्ट; श्रियः—उनका ऐश्वर्य।

जब देवताओं के अनुयायियों ने नर-नारायण ऋषि द्वारा उत्पन्न स्त्रियों के मोहक सौन्दर्य की ओर निहारा और उनके शरीरों की सुगन्ध को सूँघा तो उनके मन मुग्ध हो गये। निस्सन्देह ऐसी स्त्रियों के सौन्दर्य तथा उनकी भव्यता को देख कर देवताओं के अनुयायी अपने ऐश्वर्य को तुच्छ समझने लगे।

तानाह देवदेवेशः प्रणतान्प्रहसन्निव ।

आसामेकतमां वृद्ध्वं सवर्णां स्वर्गभूषणाम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनसे; आह—कहा; देव-देव-ईशः—समस्त देवताओं के परमेश्वर; प्रणतान्—जिन्होंने उनके समक्ष शीश झुकाया था; प्रहसन् इव—मानो हँस रहे हों; आसाम्—इन स्त्रियों के; एकतमाम्—एक; वृद्ध्वम्—चुन लीजिये; स-वर्णाम्—उपयुक्त; स्वर्ग—स्वर्ग का; भूषणाम्—आभूषण।

तब देवों के परमेश्वर किंचित मुसकाये और अपने समक्ष नतमस्तक स्वर्ग के प्रतिनिधियों से कहा, “तुम इन स्त्रियों में से जिस किसी को भी अपने उपयुक्त समझो, उसे चुन लो। वह स्वर्गलोक की आभूषण (शोभा बढ़ाने वाली) बन जायेगी।”

तात्पर्य : नर-नारायण ऋषि देवताओं की पराजय देख कर कुछ कुछ हँस रहे थे। किन्तु अत्यधिक गम्भीर होने के कारण वे वास्तव में हँसे नहीं। यद्यपि देवताओं ने सोचा होगा कि इन स्त्रियों की तुलना में हम अत्यन्त तुच्छ और मूर्ख हैं, इसलिए भगवान् ने उन्हें प्रोत्साहित किया कि वे उनमें से एक स्त्री चुन लें, जिसे वे अपने समान चरित्र वाली समझते हों। इस प्रकार चुना हुआ सौन्दर्य स्वर्ग का आभूषण बन जायेगा।

ओमित्यादेशमादाय नत्वा तं सुरवन्दिनः ।

उर्वशीमप्सरःश्रेष्ठां पुरस्कृत्य दिवं ययुः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

ओम् इति—स्वीकृति सूचक ॐ का उच्चारण करके; आदेशम्—उनका आदेश; आदाय—लेकर; नत्वा—नमस्कार करके; तम्—उसको; सुर—देवताओं के; वन्दिनः—उन सेवकों ने; उर्वशीम्—उर्वशी की; अप्सरः—श्रेष्ठाम्—अप्सराओं में सर्वश्रेष्ठ; पुरः—कृत्य—आदरवश आगे करके; दिवम्—स्वर्ग; ययुः—लौट गये।

देवताओं के उन सेवकों ने ॐ शब्द का उच्चारण करते हुए अप्सराओं में सर्वोत्कृष्ट उर्वशी को चुन लिया। वे आदरपूर्वक उसे आगे करके स्वर्गलोक लौट गए।

इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतां त्रिदिवीकसाम् ।

ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

इन्द्राय—इन्द्र को; आनम्य—झुक कर; सदसि—सभा में; शृण्वताम्—सुनने में व्यस्त; त्रि-दिव—तीनों स्वर्ग; ओकसाम्—जिनके निवासी; ऊचुः—उन्होंने कहा; नारायण-बलम्—भगवान् नारायण के बल के बारे में; शक्रः—इन्द्र; तत्र—उस पर; आस—हुआ; विस्मितः—चकित।

देवताओं के सेवक इन्द्र-सभा में जा पहुँचे और तीनों स्वर्गों के निवासियों के सुनते सुनते उन्होंने इन्द्र से नारायण के परम बल के बारे में बतलाया। जब इन्द्र ने नर-नारायण ऋषि के बारे में सुना और अपने अपराध के विषय में अवगत हुआ, तो वह डरा और चकित भी हुआ।

हंसस्वरूप्यवददच्युत आत्मयोगं

दत्तः कुमार ऋषभो भगवान्पिता नः ।

विष्णुः शिवाय जगतां कलयावतिर्ण-

स्तेनाहता मधुभिदा श्रुतयो हयास्ये ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

हंस-स्वरूपी—हंस-अवतार का अपना नित्य स्वरूप धारण किये; अवदत्—बोले; अच्युतः—अच्युत भगवान्; आत्म-योगम्—आत्म-साक्षात्कार; दत्तः—दत्तात्रेय; कुमारः—सनक इत्यादि कुमारगण; ऋषभः—ऋषभदेव; भगवान्—भगवान्; पिता—पिता; नः—हमारा; विष्णुः—भगवान् विष्णु; शिवाय—कल्याण हेतु; जगताम्—सारे जगत के; कलया—अपने गौण अंशों द्वारा, कलाओं द्वारा; अवतीर्णः—इस जगत में अवतरित होकर; तेन—उसके द्वारा; आहताः—(पाताल-लोक से) वापस लाये गये; मधु-भिदा—मधु असुर के मारने वाले के द्वारा; श्रुतयः—वेदों के मूल ग्रंथ; हय-आस्ये—घोड़े के सिर वाले अवतार में।

अच्युत भगवान् विष्णु इस जगत में अपने विविध आंशिक अवतारों के रूप में अवतरित हुए हैं यथा हंस, दत्तात्रेय, चारों कुमार तथा हमारे अपने पिता, महान् ऋषभदेव। ऐसे अवतारों के द्वारा भगवान् सारे ब्रह्माण्ड के लाभ हेतु आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान पढ़ाते हैं। उन्होंने हयग्रीव के रूप में प्रकट होकर मधु असुर का वध किया और इस तरह वे पाताल-लोक से वेदों को वापस लाये।

तात्पर्य : स्कंध पुराण में कहा गया है कि ब्रह्माण्ड के स्वामी स्वयं हरि एक बार कुमार नामक तरुण ब्रह्मचारी के रूप में प्रकट हुए और सनत्कुमार को दिव्य ज्ञान दिया।

गुप्तोऽप्यये मन्वरिलौषधयश्च मात्स्ये

क्रौडे हतो दितिज उद्धरताम्भसः क्षमाम् ।

कौर्मे धृतोऽद्रिरमृतोन्मथने स्वपृष्ठे

ग्राहात्प्रपन्नमिभराजममुञ्चदार्तम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

गुप्तः—रक्षित; अप्यये—प्रलय के समय; मनुः—वैवस्वत मनु; इला—पृथ्वी-लोक; औषधयः—वनस्पतियाँ; च—तथा; मात्स्ये—अपने मत्स्य अवतार में; क्रौडे—वराह अवतार में; हतः—मारा गया; दिति-जः—दिति-पुत्र हिरण्याक्ष; उद्धरता—उद्धारकर्ता द्वारा; अम्भसः—जल से; क्षमाम्—पृथ्वी को; कौर्मे—कच्छप के रूप में; धृतः—धारण किया हुआ; अद्रिः—पर्वत (मन्दर); अमृत-उन्मथने—जब अमृत मन्थन हो रहा था (असुरों तथा देवों द्वारा एक साथ); स्व-पृष्ठे—अपनी पीठ पर; ग्राहात्—ग्राह या घड़ियाल से; प्रपन्नम्—शरणागत; इभ-राजम्—गजेन्द्र; अमुञ्चत्—छुड़ाया; आर्तम्—पीड़ित।

मत्स्य अवतार में भगवान् ने सत्यव्रत मनु, पृथ्वी तथा उसकी मूल्यवान औषधियों की रक्षा की। उन्होंने प्रलय-जल से उनकी रक्षा की। सूकर के रूप में भगवान् ने दिति-पुत्र हिरण्याक्ष का वध किया और ब्रह्माण्ड-जल से पृथ्वी का उद्धार किया। कच्छप-रूप में उन्होंने अपनी पीठ पर मन्दर पर्वत को उठा लिया, जिससे समुद्र को मथ कर अमृत निकाला जा सके। भगवान् ने शरणागत गजेन्द्र को बचाया, जो घड़ियाल के चँगुल में भीषण यातना पा रहा था।

संस्तुन्वतो निपतितान्श्रमणानृषींश्च
 शक्रं च वृत्रवधतस्तमसि प्रविष्टम् ।
 देवस्त्रियोऽसुरगृहे पिहिता अनाथा
 जघ्नेऽसुरेन्द्रमभयाय सतां नृसिंहे ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

संस्तुन्वतः—स्तुति कर रहे; निपतितान्—(गो-खुर के जल में) गिरे हुए; श्रमणान्—साधुओं को; ऋषीन्—ऋषियों (वालखिल्यों) को; च—तथा; शक्रम्—इन्द्र को; च—तथा; वृत्र-वधतः—वृत्रासुर के वध से; तमसि—अंधकार में; प्रविष्टम्—लीन; देव-स्त्रियः—देव-पत्नियाँ; असुर-गृहे—असुर के महल में; पिहिताः—बन्दी बनाई गई; अनाथाः—असहाय; जघ्ने—मार डाला; असुर-इन्द्रम्—असुरों के राजा, हिरण्यकशिपु को; अभयाय—अभयदान के निमित्त; सताम्—सन्त-भक्तों को; नृसिंहे—नृसिंह-अवतार में।

भगवान् ने वालखिल्य नामक लघु-रूप मुनियों का भी उद्धार किया, जब वे गो-खुर-जल में गिर गये थे और इन्द्र उन पर हँस रहा था। तत्पश्चात्, भगवान् ने इन्द्र को भी बचाया, जो वृत्रासुर-वध के पापकर्म के फलस्वरूप अंधकार से प्रच्छन्न था। जब देव-पत्नियाँ असुरों के महल में असहाय होकर बन्दी बनाई गई थीं, तो भगवान् ने ही उन्हें बचाया। अपने नृसिंह-अवतार में भगवान् ने अपने सन्त-भक्तों का भय दूर करने के लिए असुरराज हिरण्यकशिपु का वध किया था।

देवासुरे युधि च दैत्यपतीन्सुरार्थे
 हत्वान्तरेषु भुवनान्यदधात्कलाभिः ।
 भूत्वाथ वामन इमामहरद्वलेः क्षमां
 याच्ञाच्छलेन समदाददितेः सुतेभ्यः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

देव-असुरे—देवताओं तथा असुरों के; युधि—युद्ध में; च—तथा; दैत्य-पतीन्—असुरों-नायकों को; सुर-अर्थे—देवताओं के हेतु; हत्वा—मार कर; अन्तरेषु—प्रत्येक मन्वन्तर में; भुवनानि—सारे लोकों में; अदधात्—रक्षा की; कलाभिः—विविध कलाओं द्वारा; भूत्वा—बन कर; अथ—और भी; वामनः—बौने ब्राह्मण बालक के रूप में अवतार; इमाम्—यह; अहरत्—ले लिया; बलेः—बलि महाराज से; क्षमाम्—पृथ्वी; याच्ञा-छलेन—दान माँगने के बहाने; समदात्—दिया; अदितेः—अदिति के; सुतेभ्यः—पुत्रों (देवताओं) को।

भगवान् देवताओं तथा असुरों के बीच होने वाले युद्धों का लाभ निरन्तर असुरों-नायकों को मारने के लिए उठाते हैं। इस प्रकार भगवान् प्रत्येक मन्वन्तर में अपने विभिन्न अवतारों के माध्यम से ब्रह्माण्ड की रक्षा करके देवताओं को प्रोत्साहित करते हैं। भगवान् वामन के रूप में भी प्रकट हुए और तीन पग भूमि माँगने के बहाने बलि महाराज से पृथ्वी ले ली। तत्पश्चात्, भगवान् ने अदिति-पुत्रों को सारा जगत वापस कर दिया।

निःक्षत्रियामकृत गां च त्रिःसप्तकृत्वो
 रामस्तु हैहयकुलाप्ययभार्गवाग्निः ।
 सोऽब्धि बबन्ध दशवक्त्रमहन्सलङ्कं
 सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तितः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

निःक्षत्रियाम्—क्षत्रियविहीन; अकृत—बना दिया; गाम्—पृथ्वी को; च—तथा; त्रिः-सप्त-कृत्वः—इक्कीस बार; रामः—परशुराम ने; तु—निस्सन्देह; हैहय-कुल—हैहयवंश के; अप्यय—विनाश; भार्गव—भृगुवंशी; अग्निः—अग्नि; सः—वह; अब्धिम्—सागर; बबन्ध—अपने अधीन कर लिया; दश-वक्त्रम्—दस सिर वाले रावण को; अहन्—मार डाला; स-लङ्कम्—अपने राज्य लंका के सैनिकों समेत; सीता-पतिः—सीता के पति भगवान् रामचन्द्र; जयति—सदैव विजयी होते हैं; लोक—सम्पूर्ण जगत के; मल—कल्मष; घ्न—नष्ट करने वाला; कीर्तिः—जिनके यश का वर्णन करने के कारण।

परशुराम का जन्म भृगुवंश में अग्नि के रूप में हुआ, जिसने हैहय कुल को जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार भगवान् परशुराम ने पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से विहीन कर दिया। वही भगवान् सीतादेवी के पति रामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने दस सिरों वाले रावण को लंका के सारे सैनिकों समेत मारा। वे श्रीराम जिनकी कीर्ति संसार के कल्मष को नष्ट करती है सदैव विजयी हों!

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार भगवान् रामचन्द्र नव-योगेन्द्रों के समकालीन अवतार थे। इसीलिए उन्होंने भगवान् रामचन्द्र को विशेष आदर दिया, जैसाकि *जयति* शब्द से सूचित होता है।

भूमेर्भरावतरणाय यदुष्वजन्मा
 जातः करिष्यति सुरैरपि दुष्कराणि ।
 वादैर्विमोहयति यज्ञकृतोऽतदर्हान्
 शूद्रान्कलौ क्षितिभुजो न्यहनिष्यदन्ते ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

भूमेः—पृथ्वी का; भर—भार; अवतरणाय—उतारने के लिए; यदुषु—यदुवंश में; अजन्मा—अजन्मा भगवान्; जातः—जन्म लेकर; करिष्यति—करेंगे; सुरैः—देवताओं द्वारा; अपि—भी; दुष्कराणि—कठिन कर्म; वादैः—तर्कों द्वारा; विमोहयति—मोहित करेंगे; यज्ञ-कृतः—वैदिक यज्ञों के कर्ता; अतत्-अर्हान्—जो इस तरह लगे रहने के योग्य नहीं हैं; शूद्रान्—शूद्रों को; कलौ—कलियुग में; क्षिति-भुजः—शासक; न्यहनिष्यत्—वध करेगा; अन्ते—अन्त में।

पृथ्वी का भार उतारने के लिए अजन्मा भगवान् यदुवंश में जन्म लेंगे और ऐसे कर्म करेंगे, जो देवताओं के लिए भी कर पाना असम्भव है। वे बुद्ध के रूप में तर्कदर्शन की स्थापना करते हुए अयोग्य वैदिक यज्ञकर्ताओं को मोहित करेंगे। और कल्कि के रूप में वे कलियुग के अन्त में अपने को शासक बतलाने वाले सारे निम्न श्रेणी के लोगों का वध करेंगे।

तात्पर्य : इस श्लोक में यदुवंश में भगवान् के प्राकट्य से कृष्ण तथा बलराम दोनों के प्राकट्य का मन्तव्य निहित होना समझा जाता है, जिन्होंने मिलकर पृथ्वी के भारस्वरूप असुर शासकों का अन्त किया। श्रील जीव गोस्वामी ने यह इंगित किया है कि शूद्रों अर्थात् निम्न श्रेणी के लोगों से निपटने के लिए जिन अवतारों का वर्णन हुआ है, वे बुद्ध तथा कल्कि के सूचक हैं। जो लोग स्थूल इन्द्रिय-तृप्ति के लिए, यथा पशुओं की पापमय हत्या के लिए वैदिक यज्ञ करते हैं, वे निश्चय ही शूद्रों की कोटि में आते हैं, जिस तरह कि कलियुग के तथाकथित राजनीतिक नेता जो राज्य-व्यवस्था के नाम पर अनेक कहर ढाते हैं।

एवंविधानि जन्मानि कर्माणि च जगत्पतेः ।

भूरीणि भूरियशसो वर्णितानि महाभुज ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधानि—इस तरह के; जन्मानि—जन्म; कर्माणि—कर्म; च—तथा; जगत्-पतेः—ब्रह्माण्ड के स्वामी के; भूरीणि—असंख्य; भूरि-यशसः—अत्यन्त यशस्वी; वर्णितानि—वर्णित; महा-भुज—हे बलशाली राजा निमि।

हे महाबाहु राजा, ब्रह्माण्ड के स्वामी भगवान् के ऐसे जन्म तथा कर्म असंख्य हैं, जिस तरह कि मैं वर्णन कर चुका हूँ। वस्तुतः भगवान् की कीर्ति अनन्त है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कंध के अन्तर्गत “राजा निमि से द्रुमिल द्वारा ईश्वर के अवतारों का वर्णन” नामक चौथे अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।